RNI No. 26281/74 रजि. नं. पी.बी./जे.एल–011/2015-17

ओ३म्

साप्ताहिक

आर्य मर्यादा

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का प्रमुख पत्र

वर्ष: 45, अंक : 21 एक प्रति 2 : रुपये

कुल पृष्ठ : 8

रविवार 25 अगस्त, 2019

विक्रमी सम्वत् 2076, सृष्टि सम्वत् 1960853120

दयानन्दाब्द : 195 वार्षिक शुल्क : 100 रुपये

आजीवन शुल्क : 1000 रुपये

दूरभाष : 0181-2292926, 5062726

E-mail: apspunjab2010@gmail.com,

www.aryapratinidhisabha.org

वर्ष–45, अंक : 21, 22-25 अगस्त 2019 तदनुसार 9 भाद्रपद, सम्वत् 2076 मूल्य 2 रु०, वार्षिक 100 रु० आजीवन 1000 रु०

आप्त पुरुष-योगीराज श्रीकृष्ण

लेखक:- श्री सुदर्शन शर्मा प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब

योगीराज श्रीकृष्ण के सम्बन्ध में महर्षि दयानन्द सरस्वती जी सत्यार्थ प्रकाश के 11 वें समुल्लास में पुराणों की समीक्षा करते हुए लिखते हैं कि– **देखो! श्रीकृष्ण जी का इतिहास महाभारत में अत्युत्तम है। उनका गुण, कर्म, स्वभाव और चरित्र आप्त पुरूषों के सदृश है। जिसमें कोई अधर्म का आचरण श्रीकृष्ण जी ने जन्म से लेकर मरणपर्यन्त बुरा काम कुछ भी किया हो, ऐसा नहीं लिखा और इस भागवत वाले ने अनुचित मनमाने दोष लगाये हैं। दूध, दहीं, मक्खन आदि की चोरी, और कुब्जा दासी से समागम, परस्त्रियों से रासमण्ड़ल क्रीडा आदि मिथ्या दोष श्रीकृष्ण जी में लगाए हैं। इस को पढ़-पढ़ा, सुन-सुना के अन्य मत वाले श्रीकृष्ण जी की बहुत सी निन्दा करते हैं। जो यह भागवत न होता तो श्रीकृष्ण जी के सदृश महात्माओं की झूठी निन्दा क्योंकर होती?**

ऋषि दयानन्द ने भारतीय सत्य सनातन धर्म का रूप प्रत्यक्ष किया। वेदों पर आधारित उस रूप का मन्थन किया, मनन किया और सारी आयु उसका ही प्रचार किया। उस सत्य सनातन धर्म के अन्तर्गत वेद हैं, उपनिषद हैं, आर्ष ग्रन्थ हैं और जीवन के घटक महापुरूषों की एक लम्बी परम्परा है। उस महान् परम्परा के धन्य श्री राम और श्री कृष्ण हैं। यह हो ही नहीं सकता था कि ऋषि दयानन्द भगवान् श्री कृष्ण के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट न करते। महर्षि दयानन्द की दृष्टि में श्रीकृष्ण का स्वरूप दूसरों से अलग था। महर्षि दयानन्द की दृष्टि में

श्रीकृष्ण एक नीतिवेत्ता, योगी, ईश्वर उपासक, योद्धा थे। योगीराज श्री कृष्ण का नाम हिन्दू मानस में पूर्ण रूप से व्याप्त है। उनका जीवन जन्म से लेकर मृत्यु तक बहुत अधिक लौकिक तथा अलौकिक घटनाओं द्वारा बुना गया है। न जाने कितने चमत्कारिक प्रसंगों की उद्भावना हो चुकी है और अभी हो रही है। भारतीय साहित्य का कोई अंग, काव्य, नाटक, गद्य, पद्य ऐसा नहीं जो भगवान् श्री कृष्ण से अनुप्राणित न हो।

ऋषि दयानन्द वस्तुत: ऋषि थे। वे लगातार सत्य दर्शन के लिए प्रयत्नशील रहे। उनकी श्रद्धा का केन्द्र केवल परमात्मा की पवित्र वेदवाणी थी। इसके अतिरिक्त सभी शास्त्रों को, सिद्धान्तों को, क्रिया कलापों को और युग पुरूषों के जीवन को वे तर्क की कसौटी से परखते थे। परमात्मा ही उनके लिए एक जगनियन्ता और स्रष्टा था, शेष सब जीव अल्पज्ञ तथा मर्यादित शक्तियों के स्वामी थे। ऋषि दयानन्द को इतना समय नहीं मिला कि वे एक-एक महापुरूष के जीवन का निरीक्षण करते परन्तु उन्होंने अपना सूक्ष्म दृष्टिकोण सब महापुरूषों के विषय में दे दिया है और उसे पल्लवित करने का कार्य आर्य जनों के लिए छोड़ दिया है।

भगवान् श्रीकृष्ण के भक्तों में कोई जन्म लीला के चमत्कारों पर मुग्ध है, कोई बाल गोपाल के खेलों का रहस्य खोलता है, कोई रासलीला रचाकर उसका वर्णन करता है, कोई उसे राधा के साथ जोड़कर उसकी पूजा करता है, कोई गोपियों के साथ नचाकर नाचते-गाते हुए उसे मानते हैं और कोई गीता योग के चक्रव्यूह में मुग्ध होकर भटक रहा है। पर ऋषि की दिव्य दृष्टि ने कृष्ण के विलक्षण शौर्य सम्पन्न और राजनीति निष्णान्त राष्ट्र पुरूष रूप को परखा और देखा।

जैसे चाणक्य ने चन्द्रगुप्त का विकास कर एक विशाल भारतीय राष्ट्र का निर्माण किया था जिसकी सीमाएं नर्मदा से लेकर कन्धार तक विस्तृत थी, ठीक इसी प्रकार भगवान् श्री कृष्ण एक विलक्षण राष्ट्र पुरूष थे। उन्होंने पांच पाण्ड्वों का विकास किया। क्षय रोग ग्रस्त पिता की वन भ्रमण के समय मृत्यु हो गई। माद्री पति के साथ सती हो गई। माता कुन्ती को लेकर जब पाण्डु पुत्र हस्तिनापुर पहुंचे तो धृतराष्ट्र राजा थे और उनका परिवार राज्य का आनन्द ले रहा था। राज्य के वैभव को सरलता से कौन छोड़ता है? अपने आप आपद् ग्रस्त, मथुरा छोड़कर द्वारिका में बसे कृष्ण ने लगभग एक सहस्र मील दूर हस्तिनापुर में राजनीति का ऐसा चक्र चलाया कि वही पाण्डुपुत्र एक महान् राष्ट्र के अधिनायक बन गए। सम्पूर्ण महाभारत युद्ध में कृष्ण ने कहीं भी शस्त्र नहीं उठाया। युद्ध के बाद अश्वमेध यज्ञ में आसाम से लेकर गान्धार तक के राज वंशों को एक सूत्र में गूंथ कर महाभारत की विशाल कल्पना साकार की गई।

इस विशाल राष्ट्र निर्माण के कार्य

(शेष पृष्ठ छः पर)

वैदिक राजनीति

ले.-शिवनारायण उपाध्याय, 73 शास्त्री नगर दादाबाड़ी, कोटा

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती की उक्ति है, वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम-धर्म है।

इस उक्ति से प्रभावित होकर मैंने वेदों का अध्ययन प्रारम्भ किया। अध्ययन कर फिर उक्त उक्ति की सिद्धि हेतु विभिन्न विद्याओं पर वेद को आधार बना कर लेखन का कार्य का श्री गणेश किया। सर्व प्रथम वेदों में से राजनीति विषयक मंत्रों का चयन किया। लगभग 1250 मंत्रों का संकलन हुआ। इन मंत्रों द्वारा राजनीति शास्त्र के विषय में पूर्ण जानकारी प्राप्त हो जाती है। इस लेख में मैं निम्न बिन्दुओं पर विचार कर उसकी सत्यता को सत्यापित करने का प्रयत्न करूंगा।

राज्य की उत्पत्ति का सिद्धांत-वेदों के अध्ययन से विदित होता है कि राज्य संस्था की उत्पत्ति मुख्य रूप से निर्बल धार्मिक सज्जन पुरूषों की बलवान, अधर्मी, दुष्ट पुरूषों से रक्षा करने हेतु समझौतावादी सिद्धांत के अनुसार सामान्य प्रजा द्वारा की गई है।

ऋग्वेद 1.36.5. में कहा गया है कि-हे राजन्। आप धूर्त, अधर्मी, कृपण, हिंसक लोगों से हमें बचाइये। ऋ. 7.24.1 में कहा गया है कि हे राजन्! आपके विराजने के लिए आपका राजसिंहासन हमने बनाया है। ऋ. 10.148.1. में कहा गया है कि राज्य की उत्पत्ति का कारण खेतीबाड़ी, धन-धान्यादि सब पदार्थों की रक्षा पूर्वक उत्पत्ति और न्याय पूर्वक विभाजन राज्य द्वारा ही संभव है अन्यथा प्रजा परस्पर भक्ष्य भक्षक बनकर नष्ट हो जावें।

फिर इसी विचार को ऋ. 8.97.10 में विस्तार देकर कहा गया है-

विश्वाः पृतना अभि भूतरं नरं सजूस्ततक्षरिन्द्रं जनुश्च राजसे। मानव एक साथ मिलकर सभी को पराजित करने वाले नेता को घड़ कर राजा बनाते हैं तथा राज्य करने के लिए उसको ऐश्वर्यवान् बना डालते हैं। राजा को उसकी सेवा के उपलक्ष्य में राज्य की समस्त भूमि, खाने आदि का स्वामी स्वीकार कर लिया जाता है। साम पूर्वार्चिक अध्याय 6 प्रथम दशति के मंत्र संख्या 2 (वैसे मंत्र संख्या 587) में कहा गया है-

इन्द्रो राजा जगतश्चर्षणीनामधि क्षमा विश्व रूपं यदस्य।

अर्थात् प्रजा पालक राजा जंगम, पशु आदि तथा मनुष्यों का स्वामी है तथा जो कुछ सब प्रकार का धन है वह भी इस राजा का है। वेदों के ये विचार वर्तमान में भी राज्य की उत्पत्ति के सामाजिक समझौते के सिद्धांत के अनुरूप है।

हाब्स, रूसो और लॉक का भी यही मानना है।

2. राज्य के मूल तत्व-वेदों में राज्य के मूल तत्व के रूप में एक भाषा, एक संस्कृति, एक निश्चित भू भाग, मनुष्य जाति का निवास, एक स्वतंत्र शासन व्यवस्था तथा सरकार के पक्ष में जनमत मिलकर एक राज्य अथवा राष्ट्र का गठन करते हैं।

इस विषय में ऋग्वेद 1.13.9. में कहा गया है-

'इडा सरस्वती मही तिस्त्रो देवीर्मयोभुवः।' अर्थात् तीन देवियां मातृ भाषा, मातृ संस्कृति और मातृ भूमि हिंसा रहित तथा कल्याणकारी हैं।

फिर देश की किसी विदेशी आक्रमण से रक्षा तथा देश के अन्दर कानून और व्यवस्था स्थापित करने के लिए एक शक्ति सम्पन्न शासन की महती आवश्यकता होती है। इस सम्बन्ध में वेदों में अनेक मंत्र मिलते हैं। यहां इस लेख में मैं केवल दो मंत्र ऋग्वेद से तथा एक मंत्र अथर्ववेद से अपने कथन की सिद्धि हेतु प्रस्तुत कर रहा हूँ।

अपहत रक्षसो भङ्गुरावतः स्कभायत निर्ऋतिं सेधतामः तिम। आ नो रयिं सर्ववीरं सुनोतन देवाव्यं भरतु श्लोकम् द्रयः।। ऋ. 10.76.4.

हे राजन्! दुष्टों का नाश करो, व्यवस्था भंग करने वाले को वश में करो। हमारे लिए युक्त धन दो, पर्वत समान महान् नेताओं देवताओं के योग्य ज्ञान को प्रजा के लिए प्रचारित करो।

वि इन्द्र मघो जहिनीचा यच्छ प्रतन्युतः। अधमं गमया तमो यो अस्मां अभि दासति।। अथर्व. 1.21.2.

हे राजन्। हमारे शत्रुओं को मार डाल। सेना चढ़ा कर लाने वाले को रोक दे। जो राष्ट्र को हानि पहुंचाये उसे कैद कर अंधकार में डाल दें। ऋ.1.36.15 में कहा गया है-**पाहि नो अग्ने रक्षसः पाहिः धूर्तेरराव्णः।।**

हे राजन्। आप धूर्त, कपटी, अधर्मी, कृपण, हिंसक दुष्ट मनुष्य से हमको बचाइये।

इसके साथ ही जनमत भी शासन के पक्ष में होना आवश्यक है। जिस शासक के पक्ष में जनमत होता है उसके विषय में प्रजा ऋ. 1.80.15. के अनुसार इस प्रकार सोचती है-हे देशवासियों। हजारों व्यक्ति परस्पर मिलकर इसका सम्मान करो, बीसियों मिलकर सब ओर से नियंत्रण रखों, सैकड़ों अनुकूलता के साथ स्तुति करो उस प्रतापी शासक के लिए जो सत्य के लिए उद्यत है।

3. स्वराज्य या प्रजातंत्र-ऋ. मण्डल 1 सूक्त 80 में 16 ऋचाएं हैं। प्रत्येक ऋचा के अन्त में अर्चन्ननुस्वराज्यं शब्द आया है जो व्यक्त करता है कि हमें स्वराज्य का पुजारी बनना है। इन ऋचाओं में स्वराज्य के विकास तथा उसकी रक्षा के साधनों को जुटाने का निर्देश किया गया। इन मंत्रों के द्वारा एक लोक कल्याणकारी राज्य का विस्तृत वर्णन हुआ है।

4. गणतंत्रात्मक शासन प्रणाली-वेदों द्वारा गणतंत्रात्मक शासन प्रणाली का समर्थन किया गया है। जनता के मतों के द्वारा चुना गया शासक ही राजा अथवा गणपति कहलाता है। राजा का चुनाव सामान्य नागरिक, विद्वान् उपदेशक, मजदूर राज्य कर्मचारी आदि सभी देशवासी मिलकर करते हैं। अथर्व. 2.6.3. कहता है, **त्वमग्ने वृणते ब्राह्मता इमे शिवो अग्ने संवरणे भवानः।।** हे तेजस्वी राजन्! यह विद्वान् लोग तुझको चुनते हैं। हे तेजस्वी राजन्! हमारे चुनाव में मंगलकारी हो।

अथर्व. 3.4.7. में कहा गया है-

पथ्या रेवती बहुधा विरूपाः सर्वा संगत्य वरायस्ते अक्रम्। तास्त्वा सर्वाः संविदाना ह्वयन्तु दशमीमुग्रः सुमना वशेह।।

मार्ग पर पैदल चलने वाली, धन वाली प्रायः विविध आकार एवं स्वभाव वाली सब प्रजाओं ने एक मत होकर तेरे लिए श्रेष्ठ पद प्रदान किया है। वे सब प्रजायें तुझको पुकारें। हे तेजस्वी एवं प्रसन्न चित्त तू इस राज्य को दशमी अवस्था तक वश में रख।

5. संसद-राजा अथवा शासक को तीन सभाओं के निर्देशानुसार ही राज्य व्यवस्था चलानी होती है।

त्रीणी राजाना विदथे पुरूणी परि विश्वानि भूषथ संदासि। ऋ. 3.38.6.

तीन सभा अर्थात् विद्या सभा, धर्म सभा और राज सभा को नियत कर प्रजा को बहुत प्रकार के धनादि से अलंकृत किया जावे।

तं सभा च समितिश्च सेना च। अथर्व. 15.9.2 उस राजधर्म को तीनों सभा, मन्त्रिमण्डल तथा सेना मिलकर पालन करें। सांसदों को भी नियम के अनुकूल आचरण करना चाहिये। इस विषय में वेद कहता है-

सभ्य सभां मे पाहि ये च सभ्याः सद। अथर्व. 19.55.6. हे सभा के सभासद। तू मेरी सभा की व्यवस्था का पालन कर। जो सभा के योग्य सभासद है वे भी सभा की व्यवस्था का पालन किया करें।

अभिप्राय: यह है कि एक को राज्य का स्वतंत्र अधिकार नहीं देना चाहिये, ऐसा करने से राज्य नष्ट हो जाता है-**राष्ट्रमेव विश्याहन्ति तस्माद्राष्ट्री विशं धातुकः। विशमेव राष्ट्रायाद्यां करोति तस्माद्राष्ट्री विशमत्ति न पुष्टं पशुमन्यत इति। शत का. 13 अनु. 2. ब्रा. 3** जो प्रजा से स्वाधीन राजवर्ग रहे तो राज्य में प्रवेश करके प्रजा का नाश किया करें। जिस लिये अकेला राजा स्वाधीन होकर प्रजा का नाशक होता है अर्थात् वह राजा प्रजा को खाये जाता है। इसलिए किसी एक को राज्य में स्वाधीन न करना चाहिये। जैसे सिंह हष्ट-पुष्ट पशुओं को मारकर खा लेते हैं वैसे स्वतंत्र राजा प्रजा का नाशक होता है। (सत्यार्थ प्रकाश छठा समुल्लास) राष्ट्र में संसद ही सर्वोपरि है। वह राष्ट्र के लिए सम्पूर्ण धन के आय व्यय को स्वीकार करती है। राष्ट्र सभा (संसद) अत्यन्त अधिकार सम्पन्न होती है। वही अन्य देशों से युद्ध और शांति की आज्ञा देती है।

6. सार्व भौमिकता-सार्व भौमिकता से अभिप्राय उस व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह से है जो राज्य में सर्वाधिकार सम्पन्न है। राज्य का प्रत्येक नागरिक उसकी आज्ञा का पालन करना अपना कर्त्तव्य समझता है। राज्य के अन्तर्गत निवास करने वाला कोई भी व्यक्ति, व्यक्तियों का समूह अथवा संगठन उसकी सत्ता की अवहेलना करने का साहस नहीं करता है यदि वह ऐसा कुछ करता है तो वह शक्ति उसे इस दुस्साहस के लिए दण्डित करती है। उसे राज्य के अन्दर कोई दूसरी शक्ति कोई आदेश नहीं दे सकती है और न वह ऐसे आदेश को मानती ही है। कोई विदेशी शक्ति भी उसे आदेशित नहीं

(शेष पृष्ठ 7 पर)

सम्पादकीय

महान् तपस्वी योगीराज श्री कृष्ण

योगीराज श्री कृष्ण का जन्म दिवस सम्पूर्ण भारतवर्ष में बड़े उत्साह के साथ मनाया जाता है। उनका जन्म भाद्रपद अष्टमी को हुआ था। ऐसा कौन भारतवासी होगा जो श्रीकृष्ण महाराज के नाम को नहीं जानता। श्रीकृष्ण महाराज का जीवन महान् प्रेरणाओं से भरा हुआ है। योगीराज श्रीकृष्ण का सारा जीवन समन्वय की अटूट शृंखला है। उनके उदात्त संदेश में ज्ञान, कर्म और भक्ति का सामंजस्य है। **समत्वं योग उच्यते**- सन्तुलन को उन्होंने योग की संज्ञा दी है। श्रीकृष्ण ने हमें उन दुरितों से बचने को कहा है जो परनिन्दा, परदोष दर्शन, द्वेष तथा विभेदात्मक प्रवृत्तियों से उत्पन्न होते हैं। उन्होंने गीता में आत्मा के अमरत्व का शाश्वत उद्घोष कर जीवन को दैवी सम्पदा से संयुक्त किया। जय, पराजय, हानि, लाभ, सुख-दु:ख, निन्दा-स्तुति, शीत-उष्ण आदि द्वन्द्वों से अनासक्त रहकर स्वस्ति पथ का पथिक बनने की गरिमा उनके जीवन से प्राप्त होती है। महाभारत में उनकी कूटनीति का अद्‌भुत वर्णन करते हुए शुक्रनीति में लिखा है कि-

न कूटनीतिरभवत् श्री कृष्ण सदृशो नृपः

अर्थात् आज तक पृथ्वी पर श्रीकृष्ण के समान कूटनीतिज्ञ राजा नहीं हुआ। श्रीकृष्ण महाराज का सम्पूर्ण जीवन निष्कलंक एवं निष्पाप रहा है।

24 अगस्त को प्रतिवर्ष की भांति इस वर्ष भी कृष्ण जन्माष्टमी का पर्व मनाया जा रहा है। यह पर्व प्रेरणा देने वाले होते हैं। अगर इन पर्वों से प्रेरणा ली जाए तभी इन पर्वों का मनाना सार्थक हो सकता है। जन्माष्टमी का पर्व मनाते हुए श्री कृष्ण के जीवन से शिक्षा ग्रहण करें। उनके जीवन का प्रत्येक पक्ष उज्ज्वल और पवित्र है। श्री कृष्ण महाराज महान् योगी थे क्योंकि योगी ही संयमी होते हैं। अपनी सभी इन्द्रियों पर उनका पूर्ण अधिकार था। गृहस्थी होते हुए भी वह तपस्वी थे। उनकी धर्मपत्नी रूक्मिणी ने एक बार यह इच्छा प्रकट की कि मैं आप जैसा पुत्र चाहती हूं। इसके उत्तर में श्रीकृष्ण ने कहा कि देवी इसके लिए तुम्हें तप करना होगा। इस प्रकार दोनों ने 12 वर्ष तक कठोर तपस्या करके ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए संयमी जीवन व्यतीत किया और उसके फलस्वरूप उन्हें एक पुत्र रत्न प्रद्युम्न प्राप्त हुआ जो श्रीकृष्ण महाराज की ही प्रतिमूर्ति था।

उनका जीवन एक योगी का जीवन था। गीता के माध्यम से उन्होंने जो योग सम्बन्धित ज्ञान अर्जुन को युद्ध के मैदान में दिया वह भी उनका योगी होने का महान् प्रमाण है। आत्मा और परमात्मा का जो वर्णन उन्होंने गीता में किया है वह एक योगी ही कर सकता है। कितना सारगर्भित लिखा है कि- इस आत्मा को न शस्त्र काट सकते हैं, न आग जला सकती है, न जल गला सकता है और न वायु सुखा सकता है। यह न कटने वाला, न जलने वाला, न गलने वाला और न सूखने वाला है। यह नित्य, स्थिर, अचल और सनातन है। आत्मोत्थान के लिए मानव को निरन्तर कार्य करना चाहिए। वह काम, क्रोध और लोभ तीनों को नरक का द्वार बताते हैं जो आत्मा का विकास रोक देते हैं। उन्होंने गीता में शारीरिक तप, वाणी के तप और मन के तप का वर्णन भी गीता में किया है। श्रीकृष्ण महाराज की तीव्र बुद्धि शारीरिक पराक्रम, गूढ़ नीति और यथायोग्य बर्ताव भी उनके योगी होने का प्रबल प्रमाण है। प्राणायाम के द्वारा जब व्यक्ति अपनी शक्ति का संग्रह करके किसी शत्रु पर प्रहार करता है तो वह बड़े से बड़े पहलवान को भी धराशायी कर देता है। कंस के चाणूर और मुष्टिक महाबली पहलवानों को पराजित करना और मौत के घाट उतारना श्री कृष्ण के महाबली होने का प्रमाण था। यह शक्ति ब्रह्मचर्य, योग और तप की है। उन्होंने जीवन में प्रत्येक कार्य बुद्धिपूर्वक किया है। आततायी कंस व जरासन्ध से लेकर जितने भी दुष्टों का नाश उन्होंने कराया है। उन सब में उनकी बुद्धि का ही चमत्कार दिखाई पड़ता है। संयमी और योगाभ्यासी ही ऐसी बुद्धि को प्राप्त कर सकता है।

श्रीकृष्ण महाराज एक महान् तपस्वी और योगी थे। उनको रसिक, गोपियों के साथ नाचने वाला, चोर आदि बताना उनके उज्ज्वल और पवित्र जीवन के साथ अन्याय है, उनकी तपस्या को कलंकित करना है। जिस रूप में आज श्रीकृष्ण महाराज की पूजा की जाती है, श्रीकृष्ण के नाम पर रासलीलाएं की जाती हैं, श्रीकृष्ण का वेश बनाकर लड़कियों के साथ नचाया जाता है, उन्हें चोरी करते हुए दिखाया जाता है वह अत्यन्त घृणित है। जिसने अपने प्रत्येक कार्य में आदर्शों को स्थापित किया है, प्रत्येक कार्य के द्वारा लोगों को कर्त्तव्य मार्ग पर चलने का संदेश दिया है उसके चरित्र का चोर, कामी, लम्पट के रूप में वर्णन करना उनके साथ अन्याय है। आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश में श्रीकृष्ण के चरित्र का वर्णन करते हुए लिखा है कि-देखो श्रीकृष्ण का इतिहास महाभारत में अत्युत्तम है। उनका गुण, कर्म, स्वभाव और चरित्र आप्त पुरूषों के सदृश है। जिसमें कोई अधर्म का आचरण श्रीकृष्ण जी ने जन्म से मरणपर्यन्त बुरा काम कुछ भी किया हो ऐसा नहीं लिखा।

महर्षि दयानन्द की दृष्टि में योगीराज श्रीकृष्ण महाराज का कितना मान था यह उनके विचारों से जाना जा सकता है। श्रीकृष्ण के इस उज्ज्वल और पवित्र जीवन की धवल कीर्ति को चारों ओर फैलाएं यह हमारा भी कर्त्तव्य हो जाता है। आज समाज के सामने उनके उज्ज्वल जीवन का वर्णन करने की आवश्यकता है। श्रीकृष्ण के सम्बन्ध में जो भ्रान्तियां और मत लोगों में फैले हैं उन्हें तभी दूर किया जा सकता है यदि उनका निष्कलंक जीवन लोगों के सामने आ जाए। पुराणों में लिखी गलत बातों को लेकर जो अपमान इस महापुरूष का किया जाता है उसका निराकरण करें। उनका प्रमाणिक जीवन लोगों के सामने प्रस्तुत करना चाहिए। जितना इस महापुरूष के जीवन को कलंकित किया गया है उतना किसी का भी नहीं हुआ है।

आओ जन्माष्टमी के इस पवित्र पर्व पर सर्वगुणसम्पन्न इस महामानव का सच्चा चरित्र और स्वरूप सर्वसाधारण तक पहुंचाने का व्रत लें। उनके उज्ज्वल और निष्पाप जीवन से जनता को अवगत कराएं। उन्होंने जो असाधारण कार्य अपनी योगबुद्धि के द्वारा किए हैं, महाभारत में जो अपना आदर्श जीवन प्रस्तुत किया है, गीता के रूप में संसार को जो अलौकिक ज्ञान दिया है, अर्जुन को जो कर्त्तव्य पालन करने का पाठ पढ़ाया है उन कार्यों से जनता को अवगत कराएं ताकि इस महामानव के सम्बन्ध में जो गलत धारणाएं समाज में फैली हुई हैं उन्हें दूर किया जा सके।

प्रेम भारद्वाज
संपादक एवं सभा महामन्त्री

यज्ञ से पूर्व शुद्धि

ले.-पं. वेदप्रकाश शास्त्री, शास्त्री भवन, 4-E, कैलाशनगर, फाजिल्का, पंजाब

गतांक से आगे

दिव्य गुणयुक्त विद्वान् जिन ऋचाओं के द्वारा स्वयं को शुद्ध पवित्र करते हैं, उन ऋचाओं की सहस्रों ज्ञानधाराएं हमें भी पवित्र करें।

परम पिता परमात्मा से हम यही प्रार्थना करें-

करो शुद्ध निर्मल मेरी आत्मा को,
करूं मैं विनय नित्य सायं व प्रातः।
जय जय पिता परम आनन्द दाता।।

आत्म कल्याण के लिए वेदज्ञान ही सहारा है-

पवित्रवन्तः परि वाचमासते।।
ऋ. 9/73/3

पवित्रता के इच्छुक वेदज्ञान का सहारा लें।

पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनसा धियः।

पुनन्तु विश्वा भूतानि जातवेदः पुनीहि मा।। यजु. 19/39

हे पतित पावन परमात्मन् देव! आप हमें पवित्र करें और ऐसी कृपा करें कि जिससे समस्त देव अर्थात् विद्वान् लोग अपने विज्ञान और सद्विचार से हमें पवित्र करें। वे हमारी बुद्धियों को सत्कर्म में प्रेरित करें।

परमेश्वर की कृपा से ही सब काम सिद्ध होते हैं। वही हमारा सबसे बड़ा सहारा है। आइए, आत्मोन्नति के लिए उसी से याचना करते हैं-

मेरे देवता मुझको देना सहारा।
कहीं छूट जाए न दामन तुम्हारा।।
बिना तेरे मन में समाए न कोई।
लगन का यह दीपक बुझाए न कोई।।
तू ही मेरी किश्ती तू ही किनारा।
कहीं छूट जाए न दामन तुम्हारा।।

जहां हम परमेश्वर से सहायता के लिए प्रार्थना करते हैं वहां हमें आत्म शुद्धि के लिए भी प्रयत्नशील होना होगा। इसीलिए योगिराज श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं-

कायेन मनसा बुद्धया केवलैरिन्द्रियैरपि।
योगिनः कर्म कुर्वन्ति संगं त्यक्त्वात्मशुद्धये। गीता 5/11

निष्काम कर्मयोगी केवल इन्द्रिय, मन, बुद्धि और शरीर द्वारा भी आसक्ति को त्याग कर आत्मशुद्धि के लिए कर्म करते हैं।

अतः आत्मा को अधोगति की ओर ले जाने वाले दुर्गुणों को त्याग देना चाहिए।

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मा-देतत्त्रयं त्यजेत्।। गीता 16/21

काम, क्रोध और लोभ यह तीन प्रकार के नरक अर्थात् दु:ख के द्वार आत्मा का नाश करने वाले अर्थात् अधोगति में ले जाने वाले हैं। इसलिए इन तीनों को त्याग देना चाहिए।

आत्मोन्नति हेतु मनु महाराज ने अध्यात्म विद्या प्राप्ति का निर्देश करते हुए तप के लिए भी विशेष बल दिया है। परन्तु तप के अन्तर्गत क्या आता है, यह आगे वर्णित है।

ऋतं तपः सत्यं तपो दमस्तपः स्वाध्यायस्तपः।।
तैत्तिरीय शिक्षा 9, तै. आ. 10/8

(ऋतं तपः) यथार्थ शुद्ध भाव (सत्यं तपः) सत्य मानना, सत्य बोलना, सत्य करना (दमस्तपः) मन को अधर्म में न जाने देना, बाह्य इन्द्रियों को अन्यायाचरण में जाने से रोक रखना अर्थात् शरीर, इन्द्रिय और मन से शुभ कर्मों का आचरण करना (स्वाध्यायस्तपः) वेदादि सत्य विद्याओं का पढ़ना-पढ़ाना, वेदानुसार आचरण करना आदि उत्तम धर्मयुक्त कर्मों का नाम तप है।

श्री कृष्ण जी महाराज तीन प्रकार के शरीरस्थ तप का वर्णन करते हुए कहते हैं-

प्रथम शारीरिक तप-

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम्।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते।। गीता. 17/14

देव=विद्वान्, ब्राह्मण=वेदवेत्ता, गुरु= माता, पिता, आचार्य, वृद्धजन और ज्ञानीजनों का पूजन (सेवा, सत्कार), पवित्रता, सरलता, ब्रह्मचर्य और अहिंसा (मन, वचन, कर्म से किसी को पीड़ा न पहुंचाना) यह शारीरिक तप कहा जाता है।

द्वितीय वाणी सम्बन्धी तप-

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।
स्वाध्यायभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते।। गीता 17/15

जो उद्वेग (व्याकुल) न करने वाला, प्रिय और हितकारी सत्य भाषण है और जो वेदशास्त्रों को पढ़ने एवं परमेश्वर के ओम् नाम जपने का अभ्यास है, नि:सन्देह, वह वाणी सम्बन्धी तप कहा जाता है।

तृतीय मानसिक तप

मनः प्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः।
भाव संशुद्धिरित्येतत् तपो मानसमुच्यते।। गीता 17/16

मन की प्रसन्नता, शान्त स्वभाव, मौन (भगवद् चिन्तन करने का स्वभाव), मन का निग्रह (वश में रखना), अन्तः करण की पवित्रता-यह मन संबंधी तप कहा जाता है।

गुणों के आधार पर तप का वर्णन

1. सात्त्विक तप-

श्रद्धया परया तप्तं तपस्तत् त्रिविधं नरैः।
अफलाकांक्षिभिर् युक्तैः सात्त्विकं परिचक्षते।। गीता 17/17

फल को न चाहने वाले निष्काम योगी पुरुषों द्वारा परम श्रद्धा से किए हुए उस पूर्वोक्त त्रिविध तप को सात्त्विक तप कहते हैं।

2. राजसिक तप-

सत्कारमानपूजार्थं तपो दम्भेन चैव यत्।
क्रियते तदिह प्रोक्तं राजसं चलमध्रुवम्।। गीता 17/18

जो तप सत्कार, मान और पूजा के लिए अथवा पाखण्ड से ही किया जाता है, वह अनिश्चित (जिसका फल होने न होने में शंका हो), क्षणिक फल वाला यह तप राजसिक कहा गया है।

3. तामसिक तप-

मूढग्राहेणात्मनो यत्पीड्या क्रियते तपः।
परस्योत्सादनार्थं वा तत् तामसमुदाहृतम्।। गीता 17

जो तप मूढ़ता (अज्ञानता) पूर्वक हठ से मन, वाणी और शरीर की पीड़ा के सहित अथवा दूसरे का अनिष्ट करने के लिए किया जाता है, वह तप तामसिक कहा गया है।

अवैदिक तप-जो तप वेदानुकूल नहीं हैं। अपितु पुराण एवं तन्त्र ग्रन्थों पर आधारित हैं, हठ योग के अन्दर भी इनकी गणना की जाती हैं जिनमें शरीर को ही विभिन्न प्रकार से कष्ट दिया जाता है। यथा

1. पंचाग्नि तप-चारों दिशाओं अथवा चारों ओर अग्नि जला कर बैठना और ऊपर से सूर्य तपना, यह पञ्चाग्नि तप कहलाता है। कई अग्नितपस्वी सिर पर किसी पात्र में अग्नि जला कर रख लेते हैं। जैसा कि मध्यप्रदेश में मुख्यमन्त्री दिग्विजय सिंह के द्वारा कम्प्यूटर बाबा से अनुष्ठान करवाया था। उसमें बाबा ने पञ्चाग्नि विधि अपनाई थी। इसकी सार्थकता, सफलता, सिद्धि सदैव संदिग्ध बनी रहती है। उदाहरण आपके सम्मुख है।

2. एक पैर पर खड़े रहना, धूनी रमा कर बैठना, भस्म लगाना, लम्बी-लम्बी जटाएं बढ़ाना, जल में खड़े रहना सदृश तप की गणना प्रायः तांत्रिक मान्यताओं पर आधारित है। इनमें शारीरिक कष्ट ही अधिक उठाना पड़ता है।

3. तांत्रिको द्वारा सन्तानहीन महिलाओं के लिए अन्य परिवारों के बच्चों को बलि चढ़ा देना, भी इसी कड़ी का हिस्सा है। लाखों रुपये ठग लिए जाते हैं। फिर भी अन्धविश्वासी लोग उनके चंगुल में फंसते रहते हैं।

तप-जप के नाम पर पता नहीं कितने की चपत लग जाए, कहा नहीं जा सकता। ज्वलन्त घटित घटना प्रस्तुत है-जागरण 23 मई 19 बठिंडा गांव कोट फता में मासूम भाई-बहन की बलि के मामले में अदालत में गवाही देने की तिथि छः जून निश्चित की गई है। पिछले वर्ष पांच मार्च को कोटफलता में बच्चों की बुआ के औलाद के लिए तांत्रिक सुखविंदर सिंह लक्खी के कहने पर पाँच साल के रणजोध सिंह व उनकी तीन साल की बहन श्रनामिका कौर की बलि दी गई थी।

वस्तुतः ऐसे जप, तप अवैदिक एवं तामसिक तप हैं। जैसा कि गीता के उद्धरण में स्पष्ट किया गया है। अतः इनसे दूर रहना ही श्रेयस्कर है।

मानव जीवन के महत्त्व को समझते हुए हम इसे ऐसे ही नष्ट न करें, अपितु आत्मोन्नति हेतु निरन्तर प्रयत्नशील रहें। आइए, अभी से सावधान होकर मानव जीवन को सार्थक करें।

हीरा जन्म तुझे जो मिला है, यूं ही लुटाने के काबिल नहीं है।
तेरा हर सांस अनमोल मोती, यह गंवाने के काबिल नहीं है।।
अब न संभले तो रोना पड़ेगा, नरक में गर्क होना पड़ेगा।
तेरा ऐसा बुरा हाल होगा, जो बताने के काबिल नहीं है।
हीरा जन्म तुझे जो मिला है, यूं ही लुटाने के काबिल नहीं है।।

आयु का सब से महत्त्वपूर्ण भाग यही है। अतः अभी से हमें प्रभु चिन्तन में लग जाना चाहिए। जो लोग यह सोचते हैं-

आज कहे कल भजूंगा, कल कहे फिर काल।
आजकल के करत ही, अवसर जासी चाल।।

यह जीवन बार-बार नहीं मिलता। केवल खाने-पीने, सोने में ही सारा समय मत निकाल दो-

रात गंवाई सोय कर, दिवस गंवाया खाय।
हीरा जन्म अमोल था, कौड़ी बदले जाय।।

अतः सचेत हो जाओ। ईश्वर का चिन्तन, मनन और भजन कर लो। यही समय है, कहीं पछताना न पड़ जाय-

शरण प्रभु की आओ रे, यही समय है प्यारे।
आओ प्रभु गुण गाओ रे, यही समय है प्यारे।।
उदय हुआ ओम् नाम का भानु, आओ दर्शन पाओ रे।।
अमृत झरना झरता इससे, पीकर अमर हो जाओ रे।।
छोटे बड़े सब मिल कर खुशी से, गुण ईश्वर के गाओ रे।।

यज्ञ में ऋत्विज एवं दक्षिणादि

ले.-महात्मा चैतन्यस्वामी, महर्षि दयानन्द धाम-सुन्दर नगर

वेद में मन्त्र आया है-**श्रद्धा देवा यजमाना वायुगोपा उपासते। श्रद्धां हृदय्याकूत्या श्रद्धया विन्दते वसु।।** (ऋ०10-151-4) **(देवा: श्रद्धां उपासते)** देव-वृत्ति के लोग श्रद्धा की उपासना करते हैं, वस्तुत: श्रद्धा के कारण ही वे देव बन पाते हैं, (यजमाना:) यज्ञशील पुरूष श्रद्धा की उपासना करते हैं, वस्तुत: श्रद्धा के कारण ही वे यज्ञशील बनते हैं, (वायुगोपा:) प्राणायाम के अभ्यासी श्रद्धा की उपासना करते हैं, वस्तुत: श्रद्धा के कारण ही वे योगी बनने की दिशा में आगे बढ़ते हैं... डावांडोल नहीं होते..., (श्रद्धाम् हृदयया आकूत्या) श्रद्धा से ही हृदय में दृढ़संकल्प की भावना बनती है, वस्तुत: श्रद्धा के कारण ही व्यक्ति दृढ़संकल्पी बन पाता है, (श्रद्धया विन्दते वसु) श्रद्धा से ही व्यक्ति सब वसुओं अर्थात् वस्तुओं व धनों को प्राप्त करता है... वास्तविकता यह है कि बिना श्रद्धा के किया गया कोई भी कार्य सफलीभूत नहीं होता है। यज्ञ तो जीवन का अत्यधिक श्रेष्ठ कर्म है अत: इसे मात्र औपचारिकता भर न मानकर पूरी श्रद्धा और निष्ठा के साथ करने की आवश्यकता है। वेदादि आर्ष ग्रन्थों में यज्ञ की इतनी अधिक महत्ता बताई गई है, इसे सुख, शान्ति, आनन्द और समृद्धि का आधार माना है। इससे लौकिक एवं पारलौकिक सम्पदाएं प्राप्त होती हैं,... यदि यजमान को यह सब-कुछ प्राप्त नहीं हो रहा हो तो यही मानना चाहिए कि हमारे यज्ञ-कर्म में कोई न कोई कमी रह गई है। गीता में (17-11 से 13) कहा गया है कि जो यज्ञ फल की आंकाक्षा छोड़कर, यज्ञ करना हमारा कर्त्तव्य है, यह समझकर, शास्त्र की विधि के अनुसार, मन का समाधान अर्थात् एकाग्रता से किया जाता है वह सात्विक-यज्ञ है। जो यज्ञ किसी फल को लक्ष्य में रखकर या दंभ के लिए, अपना वैभव-ऐश्वर्य प्रदर्शित करने के लिए किया जाता है, वह राजसिक-यज्ञ है। जो यज्ञ विधिहीन है, अन्नदान नहीं किया जाता, जिसमें मन्त्र-पाठ नहीं होता, दक्षिणा नहीं दी जाती, वह तामस-यज्ञ कहलाता है अर्थात् जिसमें अन्नदान न हो, मन्त्रोच्चारण न हो, दक्षिणा न दी जाए और श्रद्धाहीन हो उस तामस-यज्ञ से लाभ के स्थान पर यजमान को हानि हो जाती है... इसलिए यजमान को इन बातों का आत्मना अनुपालन करना चाहिए।

शतपथ (6-1-16 से 18) में यहां तक कहा गया है कि यजमान ब्रह्मादि का आदेश माने, उसका ध्यान इधर-उधर न हो... ऐसे ऋत्विजों का आदेश न मानने वाले श्रद्धाहीन अन्धे और बहरे यजमान सुप्रजा और पशुओं आदि से रहित होकर दु:ख को प्राप्त होंगे... यदि यज्ञ विधिपूर्वक व श्रद्धा से नहीं करोगे तो लोक में अप्रतिष्ठा और दरिद्रता को प्राप्त होंगे... और यदि कामना पूरी करना चाहते हो तो आदि से अन्त तक यज्ञ का सम्पादन एकाग्रमन से करें, इधर-उधर की बातें यज्ञ के समय सब त्याग देनी चाहिए... यजमान को बहिमुर्खी न होते हुए आभ्यन्तर्मुखी होकर यज्ञ का अनुष्ठान् करना चाहिए। शतपथ (5-3-2-2) में कहा गया है कि वह अन्धकार में प्रवेश करता है, अथवा इसमें अन्धकार प्रवेश करता है जो यज्ञ के अनाधिकारियों को यज्ञ से संयुक्त करता है। ऐतरेय (19-3) में भी कहा गया है कि यज्ञ कराने वाला ब्राह्मण यज्ञ के अनाधिकारी, पाप-कर्मरत पुरूष का यज्ञ न कराए अथवा उससे यज्ञ न करवाए। उपनिषद् (मुण्डको02-2,3...) में कहा गया है कि जब हव्य का वाहन करने वाली अग्नि प्रदीप्त हो उठती है, ज्वालाएं लपटें मारने लगती हैं, तब बीच में, श्रद्धा से आज्याभागाहुति नाम की दो आहुतियां डाली जाती हैं। अगर अग्निहोत्र उक्त प्रकार न हो-न अग्नि ही प्रदीप्त हो, न श्रद्धापूर्वक आहुतियां ही दी जाएं... अगर अग्निहोत्र दर्शेष्टिरहित हो, पौर्णमासेष्टिरहित हो, चातुर्मास्येष्टिरहित हो, नवान्नेष्टिरहित हो, अतिथि-पूजा रहित हो, आहुति रहित हो, वैश्वदेव-यज्ञ रहित हो, अर्थात् विधिरहित हो तो उक्त सातों प्रकार की विधियों से रहित होने के कारण वह यजमान के सात लोकों के पुण्यों को समाप्त कर देता है, उस यज्ञ से कोई पुण्य-फल नहीं मिलता... तैत्ति०ब्रा० (2-2-2-6,3-3-3-5) के अनुसार जो व्यक्ति पत्नीरहित है या जो बिना पत्नी का है, वह भी यज्ञ के करने-कराने का अधिकारी नहीं है क्योंकि पत्नी पुरूष का आधा भाग है, अत: पत्नीरहित यज्ञ खण्डित यज्ञ हुआ यह जानना चाहिए। (श०प०2-5-2-29)। पत्नी नि:सन्देह यज्ञ का आधा भाग है। अखण्डित होकर ही, सम्पूर्णभाव से यज्ञ का अनुष्ठान् करने की पात्रता होती है। हालांकि यज्ञ की अनिवार्यता एवं महत्व को देखते हुए ऐतरेय में व्यवस्था दी है-**तस्मादपत्नीकोऽप्यग्निहोत्रमाहरेत्।। (7-9), श्रद्धा-पत्नी, सत्यं यजमानम्।। (32-21), यजेत्सौत्रामण्यामपत्नीकोऽयसोमप:। मातापितृभ्यामनृणार्थद्यजेति वचनाच्छ्रुतिरति।।(32-8)** अर्थात् यदि पत्नी नहीं है, अथवा पति नहीं है तो भी श्रद्धा को पत्नी सत्य को यजमान बनाकर अग्निहोत्र, नित्य-यज्ञ अवश्य करें। सौत्रामणियाग में बिना पति के भी यज्ञ करने का विधान किया है। दूसरे जैसे किसी की पत्नी न हो तो क्या वह अपने माता-पिता की भोजनादि से सेवा नहीं करता है? इसलिए यज्ञादि शुभ कर्म तो मानव को हर अवस्था में करने चाहिए क्योंकि **'न ह वा अव्रतस्य देवा हविरश्नन्ति।।'** महान् विद्वान् अथिति जन जिसके घर यज्ञादि शुभ कर्म नहीं होता उस गृहस्थ के घर वे भोजन ग्रहण नहीं करते... यजमान यज्ञोपवीतधारी हो इसका उल्लेख हमें शतपथ में (2-6-1-18) इस प्रकार मिलता है-**ते सर्व एव यज्ञोपवीतिनो भूत्वा। इत्याद्यय-जमानश्च ब्रह्मा च पश्चात् परीत: पुरस्तादग्नीत्।।** ऐतरेय में भी कहा गया है -**यज्ञोपवीती एव याजयेत।** कात्यायनस्मृति में कहा गया है-**विशिखो व्युपवीतश्च यत्करोति तत्कृतम्।** अर्थात् यज्ञोपवीत और शिखा से रहित व्यक्ति जो कुछ भी यज्ञादि कार्य करता-कराता है, वह निष्फल हो जाता है। महर्षि दयानन्द जी अपने यजुर्वेदभाष्य (6-10) में लिखते हैं कि 'अब यज्ञोपवीत होने के पश्चात् शिष्य को अत्यावश्यक है कि विद्या, उत्तम शिक्षा ग्रहण और अग्निहोत्रादि का अनुष्ठान् करे-ऐसा उपदेश गुरू किया करें।'

वेद कहता है कि शुद्ध पवित्र होकर यज्ञ के योग्य बनों-**शुद्धा पूता: भवत यज्ञियास:। (अथर्व०12-2-20)।** अन्यत्र (यजु०4-11) व्रतशील बनने के लिए कहा गया है-**व्रतं कृणुत व्रतं कृणुत।** बिना व्रत के यज्ञ का अधिकारी नहीं बना जा सकता है अत: यजमान का (ऋत्विजों का भी) व्रती होना आवश्यक है। याज्ञवल्क्य जी का कथन है-**अमानुष इव वा एतद्भवति यद्व्रतमुपैति।।(श०1-9-3-23)** वह जो व्रत को धारण करता है, वह अमानुष अर्थात् देव के समान हो जाता है। ऐतरेय कहते हैं-**न ह वा अव्रतस्य देवा हविरदन्ति। (7-11, कौ०3-1)** अव्रती की आहुति को देव लोग ग्रहण नहीं करते हैं। यज्ञ करने से पूर्व यजमान एक दिन उपवास अवश्य करे, शुद्ध सूक्ष्म आहार का पान करे, एकान्तसेवी हो, ब्रह्मचर्य का पालन करे। शतपथ (1-1-1) में कहा गया है कि यज्ञ करने की इच्छा वाला प्रथम व्रत धारण करे। व्रत धारण की रीति इस प्रकार है-यजमान आहवनीय और गार्हपत्य अग्नि के बीच पूर्व की ओर मुख करके खड़ा होकर जल हाथ की अंजलि में लेकर-**अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्। इदमहमनृतात् सत्यमुपैमि।।**(यजु०1-5) इस मन्त्र से व्रत धारण करता है, उसे फिर पी लेता है। इस मन्त्र में क्या है'**अनृतात्सत्यमुपैमि।**' अर्थात् मैं अनृत से उठकर सत्य को प्राप्त होऊँ। इस रहस्य को याज्ञवल्क्य जी इस प्रकार प्रकट करते हैं-**सत्यमेव देवा अनृतं मनुष्या:। (श०1-1-4,1-1-2-27)** अर्थात् सत्य ही देव है और अनृत मनुष्य है। व्रत धारण करके यजमान देवता बन जाता है। **(क्रमश:)**

स्वतन्त्रता दिवस एवं श्रावणी उपाकर्म (रक्षाबन्धन) महोत्सव मनाया

आर्य समाज बाजार श्रद्धानन्द अमृतसर में 15 अगस्त को श्रावणी महापर्व एवं स्वतन्त्रता दिवस बड़े हर्षोंउल्लास के साथ मनाया गया। कार्यक्रम पर विशेष महायज्ञ का आयोजन किया गया। आर्यों को यज्ञोपवीत ग्रहण करवाये गये। राष्ट्रीय पर्व स्वाधीनता दिवस के सुअवसर पर आर्य समाज के प्रधान श्री शशि कोमल जी ने अपने साथियों सहित राष्ट्रीय ध्वज लहराया और राष्ट्रीय गान हुआ। इसके बाद एक विशाल कार्यक्रम का आयोजन आर्य समाज सत्संग भवन में हुआ। जिसकी अध्यक्षता आर्य समाज के प्रधान श्री शशि कोमल जी ने की। मुख्य वक्ता वेद प्रचार मन्त्री डा. पवन कुमार त्रिपाठी जी ने इस सुअवसर पर अपना ओजस्वी वक्तव्य दिया। श्रावणी पर्व एवं स्वतन्त्रता दिवस की शुभ कामनाएं देते हुए उन्होंने इन पर्वों का हमारे जीवन में क्या महत्व है, विस्तार से बताया और आर्यों को वेद मार्ग पर चलते हुए ऋषि दयानन्द जी के बताएं मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी। प्रधान शशी कोमल जी ने देश भक्ति का गीता सुनाया। स्वतन्त्रता दिवस की शुभकामनाएं दी।

इस मौके पर देश के शहीदों को याद करते हुए उन्हें सादर नमन किया गया। महामन्त्री पुरूषोतम चन्द शर्मा जी एवं साथियों की प्रेरणा से भारत सरकार को अनेक अनेक बधाई दी गई। अनुछेद 370 और 35 को जम्मू कश्मीर से समाप्त करने के लिए प्रधानमन्त्री नरेन्द्र मोदी एवं बारत सरकार के इस एतिहासिक फैसले को करतल ध्वनि के साथ भूरि भूरि प्रशंसा की। इस अवसर पर उपप्रधान पवन टण्डन, रमन वाही, डा. त्रिपाठी, रविदत आर्य बलराज (जूली) आचार्य पवन शर्मा, सुश्री मनवीन कौर, सुरजीत, विद्या सागर एवं श्रद्धानन्द महिला महाविद्यालय का स्टाफ एवं बच्चों ने भी अपनी उपस्थिति दी। शान्ति पाठ और भारत माता की जय के साथ कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। तत्पश्चात (यज्ञशेष) प्रसाद वितरित किया गया।

-डा. पवन कुमार त्रिपाठी वेद प्रचार मन्त्री आर्य समाज बाजार श्रद्धानन्द अमृतसर

श्री कृष्ण का पवित्र और महान जीवन चरित

ले.-कृष्ण चन्द्र गर्ग 831 सैक्टर 10, पंचकूला, हरियाणा

श्री कृष्ण महाभारत के सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण पात्र थे। महाभारत का युद्ध द्वापर युग के अन्त में अब से लगभग 5200 वर्ष पूर्व हुआ। श्री कृष्ण के जीवन चरित का प्रमाणिक स्रोत महाभारत का पुस्तक ही है। महाभारत के अनुसार श्री कृष्ण का जीवन बड़ा पवित्र और महान था। उन्होंने जन्म से मृत्यु तक कोई भी बुरा काम किया हो-ऐसा नहीं लिखा।

महाभारत के अनुसार श्री कृष्ण की एक पत्नी थी-रुक्मिणी। विवाह के बाद श्री कृष्ण ने अपनी पत्नी रुक्मिणी के साथ 12 वर्ष तक हिमालय पर्वत पर रहकर ब्रह्मचर्य का पालन किया। उसके पश्चात् उनके यहां एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम प्रद्युम्न रखा गया। प्रद्युम्न बड़ा होकर हू बहू अपने पिता श्री कृष्ण जैसा ही दीखता था।

महाभारत में राधा नाम की किसी स्त्री का कोई उल्लेख नहीं है।

राजसूय यज्ञ (महाभारत के युद्ध के पहले की अवस्था है)-पाण्डवों के राज्य का तेज सभी जगह पहुँच चुका था। प्रजा सुखी थी। सभी राजे-महाराजे उनका सिक्का मानते थे। तब युधिष्ठिर ने महाराजधिराज (चक्रवर्ती सम्राट) की उपाधि पाने के लिए राजसूय यज्ञ की ठानी। इसके सम्बन्ध में उसने अपने मन्त्रियों और भाईयों को बुलाकर पूछा-क्या मैं राजसूय यज्ञ कर सकता हूँ? सबने जवाब दिया-हां, अवश्य कर सकते हैं, आप इसके योग्य पात्र हैं। व्यास आदि ऋषियों से यही प्रश्न किया। उन सबने भी हां में ही उत्तर दिया। परन्तु युधिष्ठिर को श्री कृष्ण से सम्मति लिए बिना तसल्ली न हुई। उन्होंने श्री कृष्ण से कहा-हे कृष्ण! कोई तो मित्रता के कारण मेरे दोष नहीं बताता, कोई स्वार्थवश मीठी-मीठी बातें करता है। पृथ्वी पर ऐसे लोग ही अधिक हैं। उनकी सम्मति से कोई काम नहीं किया जा सकता। आप इन दोषों से रहित हैं। इसलिए आप ही मुझे ठीक-ठीक सलाह दें। तब श्री कृष्ण बोले-महान पराक्रमी जरासन्ध के जीते जी आपका राजसूय यज्ञ पूरा न होगा। उसको हराने के बाद ही यह महान कार्य सफल हो सकेगा।

जरासन्ध वध-जरासन्ध बड़े विशाल और वैभवशाली राज्य मगध का राजा था। वह बड़ा क्रूर और अत्याचारी था। उसने अपने यहां 86 राजाओं को बन्दी बना रखा था और यह ऐलान कर रखा था कि जब इनकी संख्या 100 हो जाएगी वह इन सबकी बलि चढ़ा देगा। यह अत्याचार श्री कृष्ण को सहन नहीं था। इसी कारण से वे उसे समाप्त करना चाहते थे। जरासन्ध का जन, धन, बल इतना अधिक था कि रणक्षेत्र में उसे हराना असम्भव था। श्री कृष्ण ने नीति से जरासन्ध का भीम से युद्ध करवा दिया जिसमें जरासन्ध मारा गया। तब श्री कृष्ण ने सभी बन्दी राजाओं को मुक्त कर दिया और जरासन्ध के पुत्र सहदेव को मग्ध का राजा बना दिया।

प्रथम अर्घ्य (पहला सम्मान)-राजसूय यज्ञ आरम्भ होने पर भीष्म पितामह ने युधिष्ठिर से कहा कि उपस्थित राजाओं में जो सबसे श्रेष्ठ है उसे ही प्रथम अर्घ्य देना चाहिए। युधिष्ठिर ने भीष्म से ही पूछ लिया कि ऐसा व्यक्ति कौन है जो पहले अर्घ्य पाने का पात्र है। इस पर भीष्म ने कहा-जैसे चमकने वाले सभी तारों में सूर्य सबसे अधिक प्रकाशमान है वैसे ही इन सब राजाओं में श्री कृष्ण तेज, बल, पराक्रम में सबसे अधिक हैं। इसलिए वे ही प्रथम अर्घ्य पाने के योग्य हैं। तब युधिष्ठिर की आज्ञा पाकर सहदेव ने श्री कृष्ण को प्रथम अर्घ्य दिया।

सन्धि का प्रस्ताव-पाण्डवों ने 12 वर्ष वन में बिताने के बाद 13वां वर्ष अज्ञातवास में बिताया। फिर कौरवों से अपना राज्य मांगा। जब कौरवों ने राज्य देने से इनकार कर दिया तब पाण्डवों ने युद्ध का निश्चय कर लिया। अन्तिम कोशिश के तौर पर श्री कृष्ण कौरवों के पास जाने को तैयार हुए। सबने उनको रोका कि कौरव मानने वाले नहीं हैं। तब श्री कृष्ण ने कहा कि संसार में कार्य सिद्धि के दो आधार होते हैं-एक मनुष्य का पुरुषार्थ, दूसरा ईश्वर इच्छा। मैं पुरुषार्थ तो कर सकता हूँ, ईश्वर इच्छा मेरे अधीन नहीं है। इसलिए फल मैं नहीं जानता। मैं इतना जानता हूँ कि मुझे शक्तिभर प्रयास कर लेना चाहिए।

हस्तिनापुर पहुँचने पर महात्मा विदुर ने श्री कृष्ण से कहा कि दुर्योधन मानने वाला नहीं है। अतः आप सन्धि का प्रयत्न छोड़ दें। तब श्री कृष्ण ने कहा-सारी पृथ्वी खून से लथपथ होती देख रहा नहीं जाता। और यह भी कहा-आपत्ति में पड़े अपने व्यक्ति को बालों से पकड़कर भी खींचने का यत्न करे फिर मनुष्य निन्दा का पात्र नहीं होता।

श्री कृष्ण ने सन्धि के लिए दुर्योधन, धृतराष्ट्र, कर्ण से बात की, उन्हें समझाने का प्रयास किया। परन्तु सफलता न मिली। इस दौरान दुर्योधन ने उन्हें अपने यहां भोजन करने के लिए कहा। तब श्री कृष्ण बोले-राजन्! किसी के घर का अन्न दो कारणों से खाया जाता है-या तो प्रेम के कारण या आपत्ति पड़ने पर। प्रीति तो तुम में नहीं है और संकट में हम नहीं हैं।

यजुर्वेद कर मन्त्र है-

यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च सम्यञ्चौ चरतः सह।

तं लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं यत्र देवाः सहाग्निना।।

इस वेद मन्त्र में बताया गया है कि सुखी और उन्नत जीवन के लिए दो गुणों की आवश्यकता है-एक विद्वता और दूसरा बल। श्री कृष्ण में ये दोनों गुण विद्यमान थे। उनकी बुद्धिमता और नीति के कारण ही कम शक्ति के होते हुए भी महाभारत के युद्ध में पाण्डवों ने कौरवों पर विजय प्राप्त की और शक्तिशाली, अत्याचारी राजा जरासन्ध को मार गिराया। श्री कृष्ण ने शारीरिक बल के सहारे ही अत्याचारी राजा कंस को यमलोक पहुँचा दिया और घमण्डी शिशुपाल का वध कर दिया।

गीता में श्री कृष्ण ने योग की परिभाषा ऐसे की है-योगः कर्मसु कौशलम्। अर्थात् कार्य को कुशलता पूर्वक करना योग है। इस दृष्टि से श्री कृष्ण पूर्ण योगी थे क्योंकि उन्होंने जो भी काम किए उनमें अपनी बुद्धि बल और नीति से सफलता प्राप्त की।

गीता में श्री कृष्ण ने योग की परिभाषा ऐसे की है-योगः कर्मसु कौशलम्। अर्थात् कार्य को कुशलता पूर्वक करना योग है। इस दृष्टि से श्री कृष्ण पूर्ण योगी थे क्योंकि उन्होंने जो भी काम किए उनमें अपनी बुद्धि बल और नीति से सफलता प्राप्त की।

महाभारत के युद्ध में जब अर्जुन और कर्ण के बीच लड़ाई हो रही थी तब कर्ण के रथ का पहिया पृथ्वी में धंस गया और वह उसे निकालने के लिए रथ से नीचे उतरा। तब कर्ण ने अर्जुन को लड़ाई के धर्म की दुहाई दी और वह चिल्लाया कि निहत्थे पर वार करना धर्म नहीं है। इस पर श्री कृष्ण बोले-अरे कर्ण! अब धर्म-धर्म चिल्लाता है। परन्तु-

1. जिस समय तुम, दुशासन, शकुनि और सौबल सब मिलकर ऋतुमती द्रौपदी को घसीट लाए थे, उस समय तुम्हें धर्म की याद न आई।

2. जब तुम बहुत से महारथियों ने मिलकर अकेले अभिमन्यु को घेरकर मार डाला था, उस समय तुम्हारा धर्म कहां गया था।

3. जब 13 वर्ष के बनवास के बाद पाण्डवों ने अपना राज्य मांगा और तुमने नहीं दिया, तब तुम्हारा धर्म कहां गया था।

4. जब तुम्हारी सम्मति से दुर्योधन ने भीम को विष खिलाकर नदी में डाल दिया था, तब तुम्हारा धर्म कहां गया था।

5. जब वारणावत नगर में लाख के घर में तुमने सोते हुए पाण्डवों को जलाने का प्रयत्न किया था, तब तुम्हारा धर्म कहां गया था।

कर्ण को इतना कहकर श्री कृष्ण ने अर्जुन से कहा कि इस प्रकार दलदल में फंसे कर्ण का वध करना पुण्य है, पाप नहीं। दूसरे ही क्षण कर्ण अर्जुन के बाण से जख्मी होकर गिर गया। यह थी श्री कृष्ण की नीतिमत्ता।

श्री कृष्ण को पाण्डवों द्वारा कौरवों के साथ जुआ खेलना, जूए में सब कुछ हार जाना और वन में चले जाना-इन सब बातों का पता तब चला जब पाण्डव वन में रह रहे थे। श्री कृष्ण वन में पाण्डवों से मिलने गए। वहां जाकर उन्होंने कहा कि यदि मैं द्वारिका में होता तो हस्तिनापुर अवश्य आता और जूए के बहुत से दोष बताकर जुआ न होने देता। ऐसा था श्री कृष्ण का नैतिक बल और आत्मविश्वास। दूसरी और भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, धृतराष्ट्र आदि बड़े लोग जुआ और जूए से जुड़े अन्य दुष्कर्म अपनी आँखों के सामने देखते रहे, पर उनमें से किसी में भी उसे रोकने का साहस न हुआ।

पृष्ठ 1 का शेष-आप्त पुरूष-योगीराज श्रीकृष्ण

का आधार केवल कृष्ण थे। सम्पूर्ण महाभारत का आधार कृष्ण थे। वह कृष्ण जो अवतार नहीं, चमत्कारों से, दैवी माया से घिरा कृष्ण नहीं, अपितु अपूर्व राजनीति, राष्ट्रनीति, और धर्मनीति के पारंगत राष्ट्र पुरूष भगवान् श्रीकृष्ण।

ऋषि की दिव्य दृष्टि के सामने भगवान् कृष्ण का वह दिव्य रूप था। इस विशुद्ध दिव्य रूप का साक्षात्कार ऋषि ने सैकड़ों वर्षों से प्रचलित अनेकों परम्पराओं के आधारभूत सौंदर्यपूर्ण, रहस्यपूर्ण, लीलामय, चमत्कार रूपों के संघन वन में किस प्रकार किया? यह अपने आप में एक चमत्कार है। महर्षि दयानन्द श्रीकृष्ण के उस विशुद्ध स्वरूप का प्रचार करना चाहते थे जिसके द्वारा श्रीकृष्ण नीतिमत्ता, विद्वत्ता का जनसाधारण को ज्ञान होता, जो पौराणिक कल्पनाओं के बिल्कुल विपरीत था। समाज में आज जिस स्वरूप को जनसाधारण के सामने प्रस्तुत किया जाता है श्रीकृष्ण उसकी वास्तविकता से कोसों दूर हैं। पुराणों में श्रीकृष्ण का जो स्वरूप वर्णित किया गया है वह सच्चाई से कोसों दूर है।

आर्य बन्धुओं श्रीकृष्ण जन्माष्टमी का पर्व मनाते हुए हम महर्षि दयानन्द द्वारा वर्णित एवं महाभारत में अनुप्राणित श्रीकृष्ण के आदर्श स्वरूप को अपने सामने रखें। महर्षि दयानन्द की दिव्य दृष्टि ने श्रीकृष्ण के जिस स्वरूप का मूल्यांकन किया है वही वास्तव में अनुकरणीय और प्रेरणादायक है। पुराणों के कुत्सित और लाँछित श्रीकृष्ण के स्थान पर हम महर्षि दयानन्द द्वारा वर्णित स्वरूप का समाज में प्रचार करें। लोगों को श्रीकृष्ण की वास्तविकता का बोध कराएं तभी श्रीकृष्ण जन्माष्टमी का पर्व मनाना सार्थक हो सकता है।

पृष्ठ 2 का शेष–वैदिक राजनीति

कर सकती है। वह शक्ति अपने अतिरिक्त किसी अन्य के प्रति जिम्मेवार भी नहीं होती है। वैदिक साहित्य के गहन अध्ययन से विदित होता है कि यद्यपि बाहर से देखने पर राजा में सार्व भौमिकता दिखाई देती है परन्तु वास्तविक स्थिति ऐसी नहीं है। राजा भी सभा के सदस्यों के बहुमत की अवहेलना नहीं कर सकता है ऐसा करने पर उसे अपना पद भी छोड़ना पड़ सकता है। वेद के शब्दों में **'अहं राष्टारी सङ्गमनी वसूना चिकितुषी प्रथम यज्ञियानां' ऋ. 10.125.3.** मैं राष्ट्र सभा पूरे राष्ट्र की स्वामिनी हूँ धनों की सम्यक प्राप्ति कराने वाली हूँ। उच्चतम कार्यों और व्यवहारों की मुख्य सोच विचार कर निर्णय करने वाली मैं हूँ।

ऋ. 10.125.4. में कहा गया है–

'मया सो अन्न मत्ति यो विपश्यितः प्रणिति यई श्रृणोत्युक्तम्' जो विशिष्ट ज्ञानी है, जो प्राण युक्त है, इस वचन को सुनता है वह मेरे द्वारा अन्न खा रहा है।

इस मंत्र में स्पष्ट रूप से राष्ट्र सभा को सार्वभौम सत्ता सम्पन्न माना गया है।

7. प्रशासन–वेदों के प्रशासन को तीन श्रेणियों में विभाजित किया गया है। केन्द्रियशासन, जिला (विश) शासन तथा ग्राम शासन केन्द्र में शासन का संचालन राजा और उसके मंत्री मण्डल के सदस्यों द्वारा संचालित होता है। सुविधा की दृष्टि से शासन को कोई कई विभागों में विभाजित किया गया है। मुख्य विभाग आठ होते हैं। प्रत्येक विभाग एक मंत्री के अधीनस्थ होता है। मंत्री अपने विभाग के कार्यों के लिए राजा एवं सभा के प्रति उत्तरदायी होता है। मंत्री मण्डल सदस्यों का विद्वान्, सच्चरित्र, दूरदर्शी, तत्ववेत्ता, कुशल प्रशासन एवं प्रजा को पुत्रवत स्नेह करने वाला होना आवश्यक है। मंत्री की सहायता के लिए अनेक स्तर पर राज्य कर्मचारी नियुक्त होते हैं। राज्य कर्मचारियों के लिए भी आवश्यकता है कि वे ईमानदार, न्यायप्रिय, कर्मकुशल, मेधावी, पक्षपात रहित, परिश्रम एवं अपने कार्य में रूचि लेने वाले हों।

राजा प्रशासन के शिखर पर होता है, अतः उसका यह नैतिक कर्त्तव्य है कि कानून और व्यवस्था स्थापित करने के लिए सब ओर दुष्टों पर दृष्टि रखकर उनको नियन्त्रित करे तथा अपने सहायक कर्मचारियों पर भी पैनी दृष्टि रखे तथा बड़े-बड़े पदों पर श्रेष्ठतम व्यक्तियों को ही स्थापित करे।

आ रिख कि किरा कृणु पणीनां हृदया कवे। अथेमस्मभ्यंरन्धय।। ऋ. 6.53.7.

हे विद्वान्। आप व्यवहार करने वालों की व्यवस्थाओं को सब ओर से लिखो तथा दुष्टों के हृदयों को पड़ा दो इसके पश्चात् हम लोगों के लिए सुख करो।

अथर्व. 5.8.3. में राजद्रोही पर नज़र रखने तथा उसे साधन हीन बना देने को कहा गया है।

अथर्व. 5.8.5. में कहा गया है कि यदि गलती से किसी राज्य द्रोही को उच्च पद प्राप्त हो जावे तो उस पर कठोर दृष्टि रखी जावे तथा उचित अवसर पर उसे दण्डित किया जावे।

8. कराधान–राज्य सरकारों को अपने अनिवार्य एवं ऐच्छिक जनोपयोगी कार्यों के सम्पादन हेतु अर्थ की महती आवश्यकता होती है। यह अर्थ राज्य सरकार प्रजा पर कुछ कर लगा कर संग्रह करती है। भूमि पर, जंगलात कर, आयकर आदि अनेक प्रकार के करों के माध्यम से सरकर अपने व्यय हेतु ही नहीं वरन् राष्ट्र के विकास के लिए भी आर्थिक साधन जुटाती है। विभिन्न करों की दर निर्धारण करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि कर की दर ऐसी रहे जिसे अदा करने में प्रजा के कष्ट न हो। प्रजा उसे आसानी से अदा कर सके तथा कर चोरी की संभावना ही नहीं रहे।

ऋ. 9.61.27. में कहा गया है कि प्रजा की रक्षा एवं विकास के लिए कर लेने वाले राजा को कोई भी दोषी नहीं ठहरा सकता है। यजु. 23.28. में कहा गया है कि जो राजा प्रजा के प्रति होने वाले अपराध को रोक कर उसके विकास के लिए कार्य करता है और जैसे वर्षा में गाय के खुर से बने गढ़े में भरे हुए जल में दो छोटी मछलियां तैर रही हों उसमें से पानी निकालते समय कांपता है, उसी प्रकार प्रजा से अधिक कर लेने वाला राजा भयभीत रहता है।

सरकार को कर प्रजा के जान माल की रक्षा तथा विकास के लिए दिया जाता है। यजु. 9.17. के भावार्थ में स्वामी दयानन्द सरस्वती लिखते हैं, 'जो ये राज पुरूष हम से कर लेते हैं वे निरन्तर प्रजा की रक्षा करें, नहीं तो कर न लें। हम भी उनको कर न देवे। अथर्व. 3.29.1. में कहा गया है–

यद्रजानो विभजन्त इष्टापूर्त-स्यषोडशं यमस्यामी सभासदः।

इसके अनुसार राष्ट्र नियन्ता सभासदः राज्य की इष्ट योजनाओं को पूर्ण करने के लिए प्रजा की आय के 16 प्रतिशत को कर के रूप में अपना हिस्सा बना लेते हैं।

9. सुरक्षा व्यवस्था–किसी भी सरकार का प्रथम अनिवार्य कार्य देश में शांति व व्यवस्था स्थापित करना तथा बाह्य आक्रमण से देश की रक्षा करना होता है। देश में शांति व्यवस्था स्थापित करने का कार्य पुलिस गुप्तचर, ग्रामणी आदि करते हैं। सेना का कार्य मुख्य रूप से बाह्य आक्रमण से देश की रक्षा करना होता है। सेना के कई विभाग होते हैं, जिनमें से प्रत्येक का एक सेनापति होता है। सभी सेनापति राजा के अधीनस्थ होते हैं। सेनापति अपने सैनिकों, सहयोगियों एवं पूर्व अधिकारियों से सहयोग प्राप्त कर लेने की क्षमता रखने वाला हो।

ऋ.म. 10 सूक्त 73 ऋचा 23 व 10.160.1. अथर्व. 11.9.1. में एक श्रेष्ठ सेनापति के गुणों का वर्णन है। सेना नवीनतम अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित हो इस विषय में यजु. 16.11. ऋ. 7.7.25, 8.735 में पर्याप्त लिखा गया है। ऋ. 10.102 मंत्र 4 से 10 में एवं विद्युत चालित घोड़े का वर्णन है जो शत्रु को नष्ट कर भगा देने में अकेला ही समर्थ है।

युद्ध से पूर्व जनमत को अपने पक्ष में करने का भी वर्णन है। अथर्व. 2.19.6. में प्रजा जन राजा को स्वयं युद्ध के लिए प्रेरित करते हैं। विदेशों में भी जनमत अपने अनुकूल बनाकर ही युद्ध प्रारम्भ करने को कहा गया है। युद्ध में सेना के जमाव पर भी अथर्व. 8.8.13 व 10.10.2 व 1.27.2 में विचार किया गया है। युद्ध में और उसके बाद भी शत्रु राष्ट्र को नष्ट करने का कार्य चलता रहना चाहिये।

युद्ध में छल कपट का भी सहारा लेना चाहिये। अथर्व. 8.8.8. में कहा गया है कि यह बड़े सेनापति का जाल था। इस इन्द्र जाल से मैं उन सब शत्रुओं को अन्धकार से घेर लेता हूँ, वीर सेनापति के नेतृत्व में छोटी सेना भी बड़ी सेना को मार भगाती है। ऋ. 7.8.14 में कहा गया है कि वीर सेना पति के द्वारा उत्साहित तथा वीर भाव से युक्त 60 सैनिक ही 6000 शत्रुओं को जीत लेते है और 66000 शत्रुओं को जीतने की कामना करते हैं। युद्ध के बाद सन्धि का भी वर्णन वैदिक ग्रन्थों में आया है।

10. उद्योग धंधो को प्रोत्साहन–वेदों में कृषि, पशुपालन, व्यापार, कारीगरी, वस्त्र उद्योग, खनन कार्य, भवन निर्माण कला, सड़कों व पुलों का निर्माण तथा रख रखाव, वैद्यक, अन्वेषण कार्य, कला कारखानों का निर्माण, शिल्प कला, आवगमन के साधन आदि का विस्तृत रूप से वर्णन हुआ है। इसके अतिरिक्त राज्य सेवा तथा शिक्षा का भी वेदों में पर्याप्त वर्णन हुआ है। शासक से अपेक्षा की जाती है कि वह इन उद्योगों के विकास में पूर्ण सहयोग करे। विदेशों से व्यापार करके देश को धन-धान्य से पूर्ण करने का भी वेदों में वर्णन है। विषय को आगे न बढ़ाकर अन्त में राष्ट्र के मंगल की कामना करता हूँ।

''आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम आ राष्ट्रे राजन्यःशूरऽइष व्योऽति व्याधी महारथो जायतां दोग्ध्र धेनुर्वोढान्-ड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णु रथेष्ठाः सभेयो युवास्व यजमानस्यवीरो जायतां निकामे निकामेनः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो नऽओषधयः पच्यन्ता योग क्षेमो नः कल्पताम्।।'

यजु. 22.22.

11. विदेशनीति–संसार में कोई भी अकेला रहकर विकास नहीं कर सकता है। हमारी विदेशी नीति इस प्रकार से संचालित होनी चाहिये कि हमारे मित्र राष्ट्रों की संख्या में निरन्तर वृद्धि होती रहे। अन्य देशों से व्यापार को प्रोत्साहित कर हमें अपना निर्यात कर बढ़ाना चाहिये। साम, दाम, दण्ड, भेद का प्रयोग कर अपने को शक्तिशाली बनाने का प्रयास करना चाहिये। ऋ. 6.69.8. में कहा गया है कि हे युवा राज पुरूषों। मेरे इस उपदेश को भली भांति सुनो। तुम लोग ऐश्वर्यशाली देशों के मार्गों पर जाओ और वहां शूर वीरों को इकट्ठा करके रत्नों को धारण करो।

वास्तव में आर्थिक दुराव्यवस्था को दूर करने से ही शासन सफल होता है। जो समुद्र यात्रा करता हुआ उद्योगी बन कर अपनी प्रजा के दुःख को दूर करता है वही शासन लोकप्रिय होता है। व्यापार को प्रोत्साहित करने के लिए श्रेष्ठतम व्यापारी को राज्य सरकार द्वारा सम्मानित भी किया जावे और समुद्री व्यापार को बढ़ाया भी जावे।

वेदवाणी

हे जगदीश्वर! पापी लक्ष्मी को परे धकेलो

या मा लक्ष्मीः पतयालूरजुष्टाभिचस्कन्द वन्दनेव वृक्षम्।
अन्यत्रास्मत् सवितस्तामितो धाः हिरण्यहस्तो वसु नो रराणः।।

-अथर्व० ७।११५।२

ऋषि-**अथर्वाङ्गिराः**।।देवता-**सविता**।।छन्दः-**त्रिष्टुप्**।।

विनय-हे जगदीश्वर! मेरे पास ऐसी लक्ष्मी पड़ी हुई है जो 'अजुष्टा' है, जो सेवित नहीं होती, जो किसी की प्रीतिमय सेवा में नहीं आती, वह किस काम की है? वह लक्ष्मी 'लक्ष्मी' नहीं है। वह लक्ष्मी दुराचार बढ़ाने का कारण होती है। 'अजुष्टा' लक्ष्मी पतन का भारी प्रलोभन होती है। ऐसा धन बुरे कार्यों में ही बरबाद हुआ करता है और मनुष्य को नीचे गिरा देता है। ऐसी लक्ष्मी को मैं मोह के मारे त्यागता (परहित में देता) भी नहीं हूँ और उस सबका स्वयं उपयोग भी नहीं कर सकता हूँ। इसलिए वह या तो बुरे काम में पतित हो जाती है या यूँ ही सड़कर नष्ट हो जाती है, परन्तु सबसे बुरी बात तो यह है कि यह मेरी ऐसी 'लक्ष्मी' मुझसे चिपटी हुई हर प्रकार से मुझे ही बरबाद करती है, मेरे जीवन-रस को चूसती है, अतः हे मेरे प्रेरक प्रभो! मुझमें ऐसी हिम्मत दो कि मैं उस लक्ष्मी को-इससे पहले कि वह पतित होने लगे और मुझे विनष्ट करने लगे-कहीं अन्यत्र धारित कर दूँ-किसी अच्छे कार्य में लगा दूँ, उसे अपने पर लादे न रक्खूँ। हे सवितः! तुम ही उस दुर्लक्ष्मी को यहाँ से तो हटा दो। यह 'लक्ष्मी' नहीं है, किन्तु वह मेरे लिए विनाशक शापरूप है। वह मुझ पर मोह द्वारा चिपटी हुई केवल मेरे जीवन-रस को सुखा रही है। जैसे वन्दना बेल जिस वृक्ष पर लगती है उस वृक्ष को बिल्कुल सुखा देती है, वैसे ही यह अजुष्टा लक्ष्मी मुझे घेरे हुए है, मेरा विनाश कर डालने के लिए मुझे आच्छादित किये हुए है। हे प्रभो! तुम मुझसे इसे छुड़ाओ। मेरे मोह को भङ्ग करके इसे यहाँ से हटाने का मुझे सामर्थ्य दो, नहीं तो यह 'अजुष्टा' लक्ष्मी मुझे चूसकर समाप्त कर रही है-मेरी उन्नति को रोक रही है, मेरे आत्म-तेज को हरती जा रही है।

हे प्रेरक! मेरी प्रार्थना है कि आगे से ऐसा धन तो मेरे पास आने ही न पाये। मुझे तुम बेशक थोड़ा-सा धन देना, परन्तु वह धन चमकता हुआ, तेजस्वी, निष्कलङ्क हो, हिरण्य हो, हितरमण हो। वह धन सर्वांश में उपयोगी हो, उसका एक-एक अंश मेरे तेज, मेरे आत्मवीर्य को बढ़ाने वाला हो। तुम्हारे 'हिरण्यहस्त' से ही अब मैं धन चाहता हूँ। तेरे चमकते हुए 'हिरण्यहस्त' से अब मुझे सदा ऐसा तेजस्वी धन मिलता रहे जिसका कि एक-एक कण मेरे आत्मतेज को बढ़ाने में व्यय हो तथा वह अन्यत्र भी जहाँ जाए वहाँ मनुष्यों के तेज के बढ़ाने में ही उपयुक्त हो।

स्वतंत्रता के सूत्रधार थे महर्षि दयानन्द सरस्वती

राष्ट्र की स्वतंत्रता के लिये महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा दिए गये महान योगदान को भुलाया नहीं जा सकता है। संसार उनको एक धार्मिक महापुरुष के रूप में ही जानता है। वेदों के प्रति उनकी निष्ठा और भक्ति इसी कारण थी कि वेद मानव के स्वतंत्र चिन्तन के द्वारों को खोल कर उसे एक अनन्त आकाश प्रदान करते हैं। वेद से स्वतंत्र चिन्तन शक्ति पाने वाले उदारचेता दयानन्द अपनी मातृभूमि को पराधीनता में जकड़ा देखकर चुप रहे, यह संभव न था। स्वाधीनता के इतिहास में जितने भी आन्दोलन हुये उनके बीज स्वामी जी ने अपने अमर ग्रंथ सत्यार्थ प्रकाश के माध्यम से डाले थे जिसमें गांधी जी के नमक आन्दोलन के बीज महर्षि ने तभी डाल दिये थे जब गांधी जी मात्र 6 वर्ष के बालक थे। यह कहना था एस.आर. प्रभाकर पूर्व प्राचार्य डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल पटियाला का जो आर्य समाज चौक पटियाला द्वारा स्वतंत्रता आन्दोलन में महर्षि दयानन्द सरस्वती का योगदान के विषय पर आयोजित विचार गोष्ठी पर प्रवक्ता के रूप में पहुंचे थे।

उन्होंने आगे कहा कि जीवन के हर क्षेत्र में स्वतंत्रता की अभिव्यक्ति देने वाले संन्यासी द्वारा देश की स्वतंत्रता का यह शंखनाद ही आगे चल कर भारत के जन-मन में गूंजने लगा। इस विचार गोष्ठी का आयोजन आर्य समाज के प्रधान श्री राज कुमार सिंगला के मार्ग दर्शन में किया गया। कार्यक्रम का शुभारम्भ पवित्र वैदिक यज्ञ से हुआ जिसमें आर्य समाज एवं दूसरी संस्थाओं से आए हुये लोगों ने मानव कल्याण के लिये आहुतियां प्रदान की। इस अवसर पर डा. इन्द्रमोहन सिंह ने अपने विचार व्यक्त करते हुये कहा कि दयानन्द मात्र धार्मिक सुधारक नहीं थे, वह एक महान देशभक्त थे। यह कहना अधिक ठीक होगा कि उनके लिये धार्मिक सुधार राष्ट्रीय सुधार का ही एक उपाय था। स्वदेशी आन्दोलन के मूल सूत्रधार भी महर्षि दयानन्द ही थे। महर्षि की इसी स्वदेशी भावना का परिणाम था कि भारत में सबसे पहले 1879 में आर्य समाज लाहौर के सदस्यों ने विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार का सामूहिक संकल्प लिया था।

डा. महेश गौतम ने कहा कि ऋषि का कालजयी ग्रंथ सत्यार्थ प्रकाश कितने क्रान्तिकारियों का प्रेरणा स्रोत रहा है, यह बता पाना बहुत कठिन है। शहीद-ए-आजम सरदार भगत सिंह, पं.रामप्रसाद बिस्मिल, वीर अशफाक उल्ला, दादाभाई नौरोजी, श्यामजी कृष्ण वर्मा, स्वामी श्रद्धानंद जी, लाला लाजपत राय, भाई परमानन्द, वीर सावरकर आदि न जाने कितने बलिदान सत्यार्थ प्रकाश ने पैदा किये। इस कार्यक्रम में मुख्य अतिथि के रूप में पधारे डा. अमरजीत सिंह बडैच, सह निदेशक प्रसार भारती आकाशवाणी पटियाला ने अपने सम्बोधन में कहा कि हम सब का कर्त्तव्य बनता है कि हम अपने देश के प्रति अपनी पूर्ण निष्ठा रखें तथा देश के सभी अच्छे कार्यों, स्वच्छता, प्लास्टिक बहिष्कार, जल बचाओ, सभी को शिक्षा तथा जनसंख्या नियंत्रण, आदि का जात पात से उपर उठ कर सहयोग करें और यही वास्तव में महर्षि दयानन्द और अन्य स्वतंत्रता सेनानियों द्वारा दिलाई आजादी का मान होगा और उनको हमारी सच्ची श्रद्धांजलि होगी। आचार्य पंकज कौशिक डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल चनारथल खुर्द ने भारतीय सेना को समर्पित देशभक्ति की कविता ने सभी का मन मोह लिया।

श्री विजेन्द्र शास्त्री जी ने आए हुये सभी अतिथि महानुभावों का कार्यक्रम में सहयोग के लिये धन्यवाद प्रकट किया और भविष्य में भी इसी प्रकार के सहयोग की प्रार्थना की। इस अवसर पर आर्य समाज सन्नौर से श्री राजिन्द्र वर्मा, डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल पटियाला, कुलारां, चनारथल खुर्द के शिक्षक एवं वीरेन्द्र सिंगला, विजेन्द्र शास्त्री, डा. ओम देव आर्य, गजेन्द्र शास्त्री, वेद प्रकाश तुली, कर्नल आनन्द मोहन सेठी, प्राचार्य निखिल मंडल, जितेन्द्र शर्मा, प्रवीण कुमार आर्य, रमेश गंडोत्रा आदि आर्य समाज पटियाला के सभी सदस्य उपस्थित रहे।

- विजेन्द्र शास्त्री आर्य समाज

आर्य समाज वेद मंदिर भार्गव नगर जालन्धर का चुनाव सम्पन्न

आर्य समाज वेद मंदिर भार्गव नगर जालन्धर का चुनाव दिनांक 18 अगस्त 2019 को श्री सरदारी लाल जी आर्य वरिष्ठ उप प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। सबसे पहले आर्य समाज के कोषाध्यक्ष श्री पंडित मनोहर लाल जी ने पिछले साल का लेखा जोखा जो एडीटर श्री राज कुमार रत्न द्वारा चैक किया गया था, पेश किया गया। उसके बाद सबने सर्वसम्मति से श्री सरदारी लाल जी आर्य को कमेटी की घोषणा करने का अधिकार दिया। उन्होंने अपने सम्बोधन में कहा कि पंडित मनोहर लाल जी द्वारा सुझाई गई कमेटी पर आर्य समाज के वरिष्ठ अधिकारियों द्वारा विचार विमर्श किया गया। सबने सहमति प्रदान की जो इस प्रकार है। श्री कमल किशोर जी प्रधान, श्री पं. मनोहर लाल जी वरिष्ठ उप प्रधान, श्री राज कुमार जी महामंत्री, श्री सुदेश कुमार जी कोषाध्यक्ष, श्री रमेश लाल जी उप प्रधान, श्रीमती सत्या देवी जी उप प्रधान, श्री विशम्भर कुमार जी उप मंत्री, श्री लाभ चंद जी उपमंत्री व गंगा राम आर्य स्कूल के मैनेजर, श्रीमती कान्ता देवी उप मंत्री, प्रचार मंत्री श्री जगदीश भगत, पं. सोमनाथ प्रचार मंत्री और बाकी अन्तरंग सदस्य बनाने के लिये प्रधान जी को अधिकार दिया गया। सारा कार्यक्रम अति शान्ति व सर्वसम्मति से सम्पन्न किया गया। शांति पाठ के पश्चात कार्यवाही सम्पन्न हुई।

राज कुमार मंत्री, आर्य समाज वेद मंदिर भार्गव नगर जालन्धर

स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की तरफ से मुद्रक, प्रकाशक, सम्पादक प्रेम भारद्वाज द्वारा गायत्री प्रिंटिंग प्रैस, मण्डी रोड जालन्धर पंजाब से मुद्रित एवं गुरुदत्त भवन, चौक किशनपुरा, जालन्धर से प्रकाशित। सम्पादक-प्रेम भारद्वाज
पीआरबी एक्ट के तहत प्रकाशित सामग्री के चयन हेतु उत्तरदायी किसी विवाद का न्यायिक क्षेत्र जालन्धर होगा। आर एन आई संख्या 26281/74 E-mail: apspunjab2010@gmail.com, www.aryapratinidhisabha.org